

प्रारम्भिक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस : एक मूल्यांकन

✍ डॉ० शक्ति सिंह

शोध सारांश-

ऐसे तो भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई को इतिहास के विभिन्न चरणों में बाँटना उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि यह सतत ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया थी। तिलक ने भी कहा है कि आज के उदारवादी कल के उग्रवादी होंगे तथा कल के उग्रवादी आज के उदारवादी होंगे। फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से कांग्रेस के 1885 से 1947 ई० तक के काल को तीन चरणों में बांटा जाता है। प्रथम बीस वर्ष 1885-1905 ई० तक की कालावधि प्रथम चरण या प्रारंभिक चरण के नाम से इतिहास लेखन में जानी जाती है। कांग्रेस का यह प्रारम्भिक नेतृत्व एक विशिष्ट विचारधारा और एक विशिष्ट प्रकार के राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है। मोटे तौर पर इन्हें उदारवादी या नरमपंथी कहा जाता है। इस चरण के नेताओं में दादाभाई नौरोजी, व्योमेश चंद्र बनर्जी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले जैसे पश्चिमी उदारवादी विचारधारा से प्रेरित राष्ट्रवादी नेता शामिल थे, जिन्होंने कांग्रेस को एक ठोस राष्ट्रीय आधार प्रदान करने में उल्लेखनीय योगदान दिया।

कुंजी शब्द- गरमपंथी, नरमपंथी, उदारवादी, कांग्रेस, सम्प्रदायिकता।

कांग्रेस के प्रारंभिक चरण के नेताओं की विचारधारा और कार्यक्रमों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ उभरती हैं।

- (1) **राजनीतिक उदारवादिता-** इस चरण के नेताओं में ब्रिटिश राष्ट्र की नेकनीयता और न्यायप्रियता में असीम विश्वास था। उन्हें विश्वास था कि अगर ब्रिटिश जनमत को भारत की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाता है तो वह स्वयं इसके लिए कदम उठाएगी। इनका मानना था कि अंग्रेज मुक्त भारत में अराजकता, अवसरवाद और साम्प्रदायिकता उत्पन्न होगी। इसीलिए गोखले ने अंग्रेजों को भारत में आगे दो सौ वर्ष तक बनाए रखने की दलील दी थी। दादा भाई नौरोजी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि हम तो पूर्णरूपेण राजभक्त हैं। हे ईश्वर ब्रिटिश शासन कभी समाप्त न हो। वस्तुतः इनकी शिकायत ब्रिटिश संसद से भारत सरकार द्वारा भारत में स्थापित ब्रिटिशराज के विरुद्ध थी जिसे सुधारा जा सकता था।
- (2) यह संवैधानिक आंदोलन में विश्वास करते थे। राजनीतिक व्यवहार में यह कोई अतिवादी संगठन कभी नहीं रहा।
- (3) यह सतर्क सुधारवादी थे। इनका फोकस सुधारों पर था स्वतंत्रता या स्वराज जैसी मांग नहीं थी। उसमें भी सुधार का केंद्र बिंदु विधायिका सुधार या ब्रिटिश राज के कुछ अप्रिय पक्षों को दूर करने के लिए प्रयास। ये साम्राज्यिक ढांचे के अंदर ही सीमित स्वशासन चाहते थे।

- (4) इस दौर के नेतृत्व की कार्यशैली प्रार्थना, प्रतिवेदन, स्मरणपत्र, प्रेस के द्वारा आलोचना, बैठक, सभाएँ थीं। सरकार के खुला विरोध की संस्कृति अभी तक जड़ें नहीं जमा सकी थीं।
- (5) जन समुदाय की भूमिका सीमित थी। इस चरण के नेता बुद्धिजीवी मध्यम वर्ग के थे।
- (6) सामाजिक सुधार और वर्गीय मुद्दों (कृषक-मजदूर) का दृष्टिकोण अनुपस्थित था।

लेकिन कांग्रेस की मंच पर इसी के साथ एक विचारधारा और है जो इसका विरोध करती है। यह उग्रवादी प्रकार की राष्ट्रीयता थी। बंग-भंग अथवा स्वदेशी आंदोलन (1905) से इनकी बल मिली। इसका नेतृत्व इन्हीं उग्रवादी राष्ट्रवादियों ने किया था। उदारवादियों और उग्रवादियों के बीच वैचारिक संघर्ष धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। उनके वैचारिक मतभेद और व्यक्तित्व की टकराहट तथा ब्रिटिश फूट डालो राज करो की नीति की तार्किक परिणति सूरत अधिवेशन (1907) में कांग्रेस विभाजन नरम दल और गरम दल के रूप में हुई। जिससे लॉर्ड मिंटों ने ब्रिटिश शासन के लिए एक महान विजय के रूप में रेखांकित किया है। सूरत विभाजन के पश्चात् उग्रवादी कांग्रेस मंच से अलग हो गए तथा उदारवादी नेतृत्व की निरंतरता रही किंतु 1907 से लेकर 1915 के मध्य में कोई विशिष्ट कार्यक्रम या विशिष्ट राजनीतिक गतिविधि नहीं दिखाई पड़ती है। राजनीतिक निष्क्रियता या राजनीतिक संघर्ष में शिथिलता की स्थिति दृष्टिगोचर होती है।

प्रारंभिक कांग्रेस नेतृत्व का सामाजिक संगठन-

कांग्रेस के आरंभिक चरण में इस संस्था पर जिन उदारवादी नेताओं का वर्चस्व था वे अभिजात्य वर्ग के थे। अगर हम कांग्रेस के पहले अधिवेशन पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है कि इसमें शामिल होने वाले 72 गैर सरकारी सदस्यों में अधिकतर वकील, ज़मींदार, व्यापारी और महाजन उद्योगपति, पत्रकार, डॉक्टर और धार्मिक गुरु शामिल थे। फिर हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कांग्रेस के उदारवादी चरण में नेताओं की दो प्रमुख विशेषताएँ थीं-

- (1) वे लगभग सभी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे। अतः वे सामान्य भारतीयों से सीधा संवाद स्थापित नहीं कर पाते अपितु सीमित आलोचना के बावजूद भी ब्रिटिश से वे अधिक निकटता महसूस करते थे।
- (2) दूसरे वे अपने पेशे में सफल व्यक्ति थे। जाहिर है कि वे अपने पेशे से गहरे जुड़ाव के कारण उनके पास अवकाश की कमी थी। इसलिए एक तरह से अंशकालिक राजनीतिज्ञ थे। राजनीति में वे कम समय दे पाते थे। वर्ष में कुछ दिनों के लिए एक खास स्थल पर इकट्ठा होते थे तथा कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रस्ताव एवं स्मरण पत्र जारी करते थे। 1887 में दिन शावाचा ने दादा भाई नौरोजी से फिरोज शाह मेहता के विषय में शिकायत करते हुए यह कहा था कि वे अपने पेशे में इतने व्यस्त हैं कि देश के विकास की चिंता उन्हें नहीं है। इन नेताओं का अभिजात्यपन का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 1886 में जब राना डेशिमला छुट्टी मनाने गए थे तो उनके साथ 25 नौकर थे।

प्रारम्भिक कांग्रेस के नेताओं का सामाजिक आधार उदारवादी चरण की राजनीति के स्वरूप को भी प्रभावित करता है। जैसाकि हम देखते हैं कि-

- (1) कांग्रेस के अधिवेशन में ज़मींदारों की भागीदारी थी और फिर वकील भी या तो ज़मींदार परिवार

से आये थे या उनके मुक्किल थे। इस लिए कांग्रेस कभी भी जमींदार विरोधी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकी। उदाहरण के लिए 1885 का रैयतवाड़ी कानून तथा 1899 का पंजाब लैंड एक्विजिशन एक्ट।

- (2) उसी प्रकार पूंजीपतियों के प्रभाव का यह नतीजा था कि प्रारंभिक कांग्रेस ने श्रमिकों के पक्ष में भी प्रस्ताव पारित नहीं किया। बल्कि औपनिवेशिक सरकार द्वारा लागू फैक्ट्री कानूनों का भी कांग्रेस ने विरोध किया। जैसी खान सुधारो का, जिसमें स्त्रियों और बच्चों के काम की दशाओं को सुधारने तथा एक निश्चित उम्र के बच्चों को ही काम पर लगाने का प्रस्ताव था। इस तरह हम देखते हैं कि प्रारंभिक चरण में कांग्रेस का सामाजिक आधार सीमित रहा।
- (3) फिर जैसा कि आरंभिक उदारवादी राजनीतिज्ञ मुख्यतः सवर्ण हिन्दू थे और इस सामाजिक संरचना की वजह से हम देखते हैं कि वर्गीय मुद्दों के साथ-साथ सामाजिक मुद्दे भी 1907 तक नहीं उठाए गए।

वस्तुतः नरमपंथी चाहते थे कि भारत का विकास आधुनिकता की तर्ज पर हो अब चूँकि आधुनिकता एक पश्चिमी अवधारणा थी। अतः इसका अर्थ औपनिवेशिक शासन को जारी रखने की पैरवी भी थी जब कि दूसरी ओर गरमपंथियों ने औपनिवेशिक शासन का विरोध किया और इसलिए उन्हें एक अ-पश्चिमी शब्दावली में बात करना पड़ा। एक स्वर्णयुग का स्मरण करने वाला धार्मिक पुनरुत्थान पैदा हुआ। और कभी-कभी इस अतीत को आंखे बंद करके भी स्वीकार किया गया और महिमामण्डित भी किया गया। उधर नरमपंथी राजनीतिज्ञ कांग्रेस की नीतियों और कार्यक्रम में इन नयी प्रवृत्तियों को जगह देने को तैयार नहीं थे।

प्रारंभिक कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण-

प्रारंभिक कांग्रेस का तात्पर्य 1885 से 1907 ई0 के काल से है। इस काल में कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण सामान्यता विरोध का दृष्टिकोण था लेकिन भिन्न-भिन्न समय काल में विरोध के प्रकृति में परिवर्तन था। यह परिवर्तन सीमित विरोध से खुले तौर पर विरोध और खुले तौर पर विरोध। से उग्रवादियों के पूर्णतौर पर दमन की नीति को दर्शाता है।

(1) प्रारंभिक चरण (1885-1887 ई0)-

दिसम्बर 1885 ई0 में कांग्रेस की स्थापना के बाद अंग्रेजी सरकार ने ऐसी आशा की थी कि कांग्रेस सामाजिक-सांस्कृतिक विकास के कार्यों से सम्बद्ध भारतीय बुद्धजीवी वर्ग का एक मंच है और इसकी गतिविधियाँ शैक्षणिकवर्तकों तक सीमित होगी।

इस प्रकार की गतिविधियों के प्रति सामान्य तौर पर ब्रिटिश दृष्टिकोण आलोचनात्मक था और यह दृष्टिकोण कांग्रेस के प्रति भी लागू होता था लेकिन आलोचनात्मक दृष्टि के साथ कांग्रेस से यदा-कदा जुड़ने का दृष्टिकोण भी दृष्टिगोचर होता है। व्योमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई में हुये कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में हेनरी काटन तथा विलियम बेडर बर्न जैसे अधिकारियों की सहभागिता रही थी। दादा भाई नौरोजी के अध्यक्षता में कोलकाता में हुए कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में तत्कालीन गवर्नर डफरिन ने कुछ कांग्रेस नेताओं का स्वागत किया (उद्यान भोज) और उन्हें प्रतिष्ठित आगंतुक कहा। बदरुद्दीन तैय्यब जी की अध्यक्षता में मद्रास में हुए कांग्रेस के तृतीय अधिवेशन में मद्रास के गवर्नर के

द्वारा कांग्रेस नेताओं के लिए स्वागत और भोज का आयोजन किया गया।

स्पष्ट है कि प्रारंभिक चरण में विरोध की दृष्टि खुले तौर पर विरोध की दृष्टि नहीं थी।

(2) द्वितीय चरण (1888-1905 ई०)-

किंतु शीघ्र ही अंग्रेजी सरकार के लिए यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस की भूमिका मात्र शैक्षणिक वर्तकों तक सीमित नहीं है। वह राजनैतिक चेतना का विकास, राजनैतिक माँगों का प्रस्तुतिकरण और राष्ट्रवादी मुद्दों का प्रचार कर रहा है। 1887 के वर्ष और इसके पश्चात् ब्रिटिश आलोचनात्मक दृष्टि का खुला रूप, खुले तौर पर आलोचना दृष्टिगोचर होता है।

डफरिन का कथन- “कांग्रेस अल्पसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।”

कर्जन का कथन- “कांग्रेस मृत्यु की घड़ियाँ गिन रही है और भारत में वायसराय के रूप में मेरा उद्देश्य उसके शांतिपूर्ण मृत्यु में सहयोग देना।”

ब्रिटिश वायसराय के इस प्रकार के कथन आलोचनात्मक दृष्टि के परिचायक हैं। इस काल में उन्होंने कांग्रेस को कमजोर बनाने का प्रयास किया और कांग्रेस विरोधी नीति का अनुसरण किया। ब्रिटिश सरकार ने ‘फूट डालो शासन करो’ की नीति का अनुसरण किया और राष्ट्रवादी शक्तियों को प्रतिसंतुलित करने का प्रयास किया।

- (1) रोजगार के मुद्दे पर शिक्षित भारतीयों के मध्य सांप्रदायिक संघर्ष को बल।
- (2) उच्चस्तरीय और मध्यवर्गीय मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन (कांग्रेस) के विरुद्ध प्रोत्साहन।
- (3) परंपरागत सामंती प्रकार के समूहों का आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग के विरुद्ध प्रोत्साहन।
- (4) हिन्दी-उर्दू भाषा विवाद को बल।
- (5) सैय्यद अहमद खान और राजा शिव प्रसाद को कांग्रेस के विरुद्ध प्रोत्साहन।
- (6) प्रेसविरोधी नीति का अनुसरण।
- (7) शिक्षा क्षेत्र में परिवर्तन- शिक्षा के परंपरागत स्वरूप को बल और इसके आधुनिक तथा प्रगतिशील स्वरूप का नकारा जाना। 1903 का शिक्षा अधिनियम कुछ इस दिशा में प्रयास भी।

(3) तृतीय चरण (1905-1907 ई०)-

कांग्रेस के मंच पर उग्रवादी राष्ट्रीयता का उद्भव अंग्रेजों के लिए एक नवीन चुनौती के रूप में था। इस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने विशिष्ट प्रकार की नीति का अनुसरण किया जिसमें तीन पक्ष थे-

- (1) उग्रवादियों के दमन की नीति
- (2) उदारवादियों को अपने पक्ष में लाना
- (3) उग्रवादियों का पूर्णतौर पर दमन

इस तरह की नीति से उदारवादियों और उग्रवादियों के वैचारिक संघर्ष को बल मिला। अंततः सूरत विभाजन (1907) के रूप में वे अपने उद्देश्य में सफल रहे और कांग्रेस की एकता तथा राष्ट्रीय संघर्ष कमजोर हुआ। उदारवादियों को अपने पक्ष में लाने के लिए उन्होंने जो सुधार का प्रस्तुतिकरण किया

था, के प्रति भी उनका दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं रहा। सीमित स्तर पर ही उदारवादियों की माँगों को पूरा किया गया। 1909 के एक्ट के प्रावधान इस दिशा में संकेत है।

उपलब्धियाँ/मूल्यांकन-

- (1) शुरुआती राष्ट्रवादियों को बहुत अधिक ठोस राजनीतिक सफलता नहीं मिली, जो कुछ भी हासिल हुआ उसे अपर्याप्त ही कहा जा सकता है। जैसे कि हम देखते हैं जिनके प्रयासों से 1892 का भारत परिषद अधिनियम पारित हुआ एवं जिसमें चुनाव प्रक्रिया को पहली बार लागू किया गया। किंतु व्यवहार में इसका क्रियान्वयन नहीं हुआ। यह चुनाव औपचारिक अधिक और वास्तविक कम था। फिर केंद्रीय विधानमंडल एवं प्रांतीय विधानमंडलों में गैर सरकारी सदस्यों की संख्या में मामूली वृद्धि की गई। सबसे बढ़कर सदस्यों का बजट पर अधिकार नहीं दिया गया। इनके द्वारा यह मांग उठाई गई थी कि तट के माध्यम से भारतीय उद्योगों को सुरक्षा दी जाए। किंतु बहुत आगे चल कर ही इस दिशा में प्रगति हुई। तत्कालिक रूप में इनकी माँगें स्वीकार नहीं हुई। उसी तरह इन्होंने सिविल सेवा के भारतीय करण पर बल दिया था। इनके विचार में ब्रिटेन तथा भारत दोनों ही जगहों पर एक साथ परीक्षा का आयोजन किया जाए तथा सिविल सेवा के लिए उम्र की सीमा 19 वर्ष से बढ़ाकर 23 वर्ष की जाए। 1893 में ब्रिटेन तथा भारत दोनों ही जगहों पर एक साथ प्रतियोगिता परीक्षा आयोजित कराने का प्रस्ताव लाया गया। किंतु व्यवहार में इनका क्रियान्वयन नहीं हुआ। सबसे बढ़कर सिविल सेवा में उम्र बढ़ाने जैसी माँग को ठुकरा दिया गया। इसी प्रकार सैन्य व्यय का पुनर्निर्धारण, राजस्व की दरों में कमी, हस्तशिल्प उद्योगों को बढ़ावा, स्थायी बंदोबस्त के विस्तार इत्यादि इनकी अन्य सिफारिशें थीं किंतु इनमें से कोई माँग पूरी नहीं हुई।
- (2) वे एक अखिल भारतीय सैवधानिक आंदोलन चलाने में भी असफल रहे। इन्होंने जनआंदोलन लाने का कोई प्रयास नहीं किया। इनका संकुचित सामाजिक आधार था। इनकी प्रकृति एक वार्षिक सम्मेलन वाली अधिक थी जो तीन दिन के तमाशा के दौरान केवल प्रस्ताव पारित करती थी। वे इस बात को नहीं समझ सके कि जनता आंदोलन में एक शक्तिशाली कारक की भूमिका निभा सकती है, किंतु सिक्के का दूसरा पहलू भी है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो जो काम उन्होंने हाथ में लिए थे, उसकी तात्कालिक कठिनाइयों को देखते हुए इस आंदोलन का इतिहास बहुत ही उज्ज्वल है।
- (1) भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शक्तिशाली अर्थशास्त्रीय आलोचना करके उसके सही चरित्र को नम्रतापूर्वक उजागर करने में दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे और रोमेश चंद्र दत्त ने अग्रणी भूमिका निभायी। जो बाद के सक्रिय जनसंघर्ष के दौरान राष्ट्रवादी आंदोलन की प्रमुख अस्त्र बनी।
- (2) भारतीय जनता को उनके राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हितों से जुड़े होने तथा साम्राज्यवाद के रूप में एक साझे शत्रु के अस्तित्व के प्रति जागरूक किया।
- (3) जनता को राजनीतिक कार्य में प्रशिक्षित किया व उनमें जनतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया।

- (4) इस राजनीतिक सत्य को सामने रखा कि भारत का शासन भारतीयों के हित में चलना चाहिए। राष्ट्रवाद के प्रश्न को भारतीय जीवन का प्रमुख प्रश्न बना दिया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद आरंभिक राष्ट्रवादियों ने वह बुनियाद बनायी। जिस पर राष्ट्रीय आंदोलन आगे और भी विकसित हुआ।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- (1) शुक्ला, आर०एल० - आधुनिक भारत का इतिहास
- (2) यशपाल, मेहता, ग्रोवर - आधुनिक भारत का इतिहास
- (3) हबीब, इरफान - भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रवाद
- (4) चंद्र विपिन - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष
- (5) बंदोपाध्याय, शेखर - पलासी से विभाजन तक

